पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री प्रवचनसार गाथा ११४
जयपुर, ता. ०५-०८-१९९०, प्रवचन नंबर ५४४

यह श्री प्रवचनसार परमागम शास्त्र है, जो दिव्यध्वनि का सार है, ऐसा गुरुदेव फरमाते थे। उसकी गाथा नम्बर ११४ है, ११४ एक सौ चौदह। हिन्दी में क्या एक सौ चौदह न? एक सौ चौदह, ११४ गाथा। उसका मथाला - शीर्षक है, headline उसकी। **अब, एक ही द्रव्यके** एक द्रव्य है, एक। द्रव्य तो एक ही है, **अन्यपना और अनन्यपना होनेमें जो विरोध है, उसे दूर करते हैं।** अर्थात् दूर करते हैं। अच्छा! हिन्दी में।

क्या कहा? **अब, एक ही द्रव्यके अन्यपना और अनन्यपना होनेमें जो विरोध है,** विरोध दिखता है ऊपर-ऊपर से तो भी सचमुच विरोध नहीं है। एक पदार्थ अन्य भी है और अनन्य भी है। दो शब्द विरूद्ध जैसे लगते हैं मगर (उनमें) विरोध नहीं है। उसमें अविरोध कैसे है वो बताते हैं। **उसे दूर करते हैं। (अर्थात् उसमें विरोध नहीं आता, यह बतलाते हैं):-** गाथा ११४, उसका **अन्वयार्थ**, कुंदकुंदाचार्य भगवान की मूल गाथा का शब्दार्थ।

द्रव्यार्थिक (नय) से सब द्रव्य है; और पर्यायार्थिक (नय) से वह (द्रव्य) अन्य-अन्य है, पर्याय से देखो तो अन्य-अन्य हैं और पर्याय को गौण करके देखो, पर्याय को मत देखो तो द्रव्य तो वो ही का वो ही, वो ही का वो ही है। जैसे सोना है, उसकी आकृति है। आकृति से देखो तो सोना अन्य-अन्य लगता है। सोना है, वह अन्य-अन्यरूप लगता है और आकृति की दृष्टि देखना बंद करो, उस पर्याय को देखना बंद करो तो सभी परिणामों में सोना तो अनन्य यानि जैसा है वैसा ही है। कोई सोने में फर्क पड़ता नहीं है। पर्याय से अन्य-अन्य दिखता है; द्रव्यदृष्टि से देखो तो द्रव्य वैसा का वैसा, वैसा का वैसा, कोई भी पर्याय में देखो तो वैसा का वैसा है। **क्योंकि उस समय तन्मय होनेसे (द्रव्य पर्यायोंसे) अनन्य है॥११४॥** उसकी टीका, बहुत ऊँची बात है उसमें। आत्मा का दर्शन करने की उसमें विधि बताई है, कला है आत्मदर्शन करने की।

टीका:- वास्तवमें सभी वस्तु, छहद्रव्य की पहले बात करते हैं, उसमें जीव को उतारते हैं। **वास्तवमें सभी वस्तु सामान्य-विशेषात्मक**, द्रव्य-पर्यायस्वरूप हैं। द्रव्य बिना पर्याय नहीं होती है और पर्याय बिना द्रव्य नहीं होता है, ऐसे परस्पर सापेक्ष द्रव्य का नाम पदार्थ है।

सामान्य-विशेषात्मक होनेसे वस्तुका स्वरूप देखनेवालोंके क्रमशः (१) सामान्य और (२) विशेषको जाननेवाली दो आँखें हैं। एक आँख से देखो तो द्रव्य दिखता है और दूसरी आँख से देखो तो पर्याय दिखती है। क्रम-क्रम से देखो तो यह द्रव्य है (और) यह पर्याय है। द्रव्य को देखनेवाली द्रव्यार्थिकनय है; पर्याय को देखनेवाली पर्यायार्थिकनय है। दो नय हैं, भगवान ने दो नय कहे। दो नय कहे इसका कारण क्या (है)? कि आत्मा दोरूप है - द्रव्यरूप

भी है और पर्यायरूप भी है। वो टिकता भी है और परिणाम से पलटता भी है। तो टिकता है, ऐसा ज्ञान करने के लिए द्रव्यार्थिकनय है; और परिणाम से जो वस्तु पलटती है, तो उसका ज्ञान करने के लिए पर्यायार्थिकनय है। दो नय सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान में आये हैं और वस्तु भी दो पहलूवाली है। एकांत से पर्यायरूप है ऐसा भी नहीं (और) एकांत से द्रव्यरूप है ऐसा भी नहीं, सामान्य-विशेषात्मक पूरा पदार्थ है।

(१) सामान्य और (२) विशेषको जाननेवाली दो आँखें हैं :- दो आँखें हैं, तीसरी आँख नहीं है। क्या कहा? पर को जाने ऐसी कोई आँख तीसरी है ही नहीं। पदार्थ सामान्य-विषेशरूप है तो उसको, दो को जाननेवाली दो नय हैं; एक द्रव्यार्थिकनय है और एक (पर्यायार्थिकनय)। जिसको अपनी साधना करनी हो, आत्मदर्शन करना हो उसके लिए यह बात है। प्रमाण के बाहर जाना नहीं और प्रमाण में अटकना नहीं, वो बात इसमें आएगी।

(१) द्रव्यार्थिक और (२) पर्यायार्थिक, दो नय हैं। **इनमेंसे** टीका चलती है अभी, **इनमेंसे** सामान्य-विशेषस्वरूप जो वस्तु है; वो एक द्रव्यार्थिकनय सामान्य को देखती है (और) पर्यायार्थिकनय उसके विशेष को देखती है। जो द्रव्य का विशेष हो, द्रव्य की पर्याय होनी चाहिए न? ये (माइक्रोफ़ोन मेरा) द्रव्य की पर्याय कहाँ है? ये (नोकर्म मेरा) द्रव्य की पर्याय है? अपने आत्मा की पर्याय कहाँ है ये? आत्मा की पर्याय आत्मा के बाहर होती नहीं है। तो सामान्य स्वरूप एक और एक विशेषस्वरूप, ऐसे दो स्वरूप हैं। तो दो को देखनेवाली, जाननेवाली दो नय हैं।

इनमेंसे पर्यार्यार्थिक चक्षुको सर्वथा बन्द करके, यह मुद्दे की चीज आई। पहले कहा कि वस्तु द्रव्यरूप भी है और पर्यायरूप भी है। एकांत से द्रव्यरूप भी नहीं, एकांत से पर्यायरूप भी नहीं है। प्रमाणज्ञान का विषय स्थाप दिया, पदार्थ की सिद्धि तो हो गयी। अभी प्रयोजन की सिद्धि कैसे हो? किरण भैया! 'ये सोनगढ़ के संत पर्याय को मानते नहीं हैं!' (अरे!) उड़ाते नहीं हैं, कौन उड़ाये भैया? तेरे को (कुछ) मालूम नहीं है। वस्तु सामान्य-विशेषस्वरूप है, प्रमाणज्ञान का विषय है। प्रमाणज्ञान का विषय उपादेय नहीं है। प्रमाणज्ञान में एक सामान्य और एक विशेष, उसमें हेय-उपादेय करना है। वो बताते हैं आचार्य भगवान कि **इनमेंसे पर्यायार्थिक चक्षुको** यानि जो उत्पाद-व्यय होता है परिणाम में, उसको जाननेवाली जो नय है, चक्षु यानि नय, उसको **सर्वथा बन्द करके** आहाहा! उसको जानना सर्वथा बंद कर दे।

तो शिष्य का प्रश्न आता है ऐसा कि हम उपादेयरूप न जाने तो-तो ठीक है मगर हम हेयरूप जाने कि नहीं जाने? कि जानना ही बंद कर दे तो हेयरूप-उपादेय का कहाँ भेद आया? शिष्य का प्रश्न है, आशंका, कि उस पर्याय में उपादेयरूप पर्याय को नहीं जाने, मगर ये पर्याय हेय है (ऐसा) हेयरूप जाने? कि नहीं! जानना बंद कर दे!

अच्छा! तीसरा प्रश्न आया शिष्य का (कि) उपादेयरूप भी छोड़ो, हेयरूप भी छोड़ो मगर पर्याय ज्ञेयरूप तो है कि नहीं? आहाहा! जहाँ तक तेरे ज्ञान में वो पर्याय ज्ञेयरूप भासती है, तहाँ तक भगवान आत्मा ज्ञेय नहीं होगा। क्या कहा? ये अमृतचन्द्राचार्य की अमृतमयी टीका है।

उसमें लिखा, उसमें फरमान आया, सर्वज्ञ भगवान का फरमान है कि द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। मगर तेरे को जो आत्मदर्शन करना हो तो, तेरा हित करना हो तो, तेरे को निश्चय मोक्षमार्ग प्रगट करना हो तो, तेरे को सुखी होना हो तो, तो परिणाम को जानने का बंद कर दे।

कथंचित् बंद करूँ और कथंचित् खुला रखूँ, थोड़ी? ऐसा नहीं, 'सर्वथा' शब्द है। कि जैन-दर्शन में 'सर्वथा' होता है? कि (हाँ!) सर्वथा होता है। ये सर्वज्ञ भगवान का आगम है, उसमें लिखा है। किरण भैया! 'सर्वथा' लिखा है कि नहीं टीका में देखो तो? है कि नहीं वहाँ? है? अच्छा! यह सोनगढ़ का नहीं है, वो तो भगवान की बात है। आहाहा! इसलिए कभी-कभी गुरुदेव बोलते हैं, "बोलो भाई! संस्कृत में है कि नहीं 'सर्वथा' शब्द?" आहाहा! उसको पर्याय का पक्ष (है); करने के बहाने भी पक्ष, और जानने के बहाने भी पक्ष रह गया है। एक बार पर्याय को जानना बंद कर दे और आत्मा को जाननेवाली चक्षु जो बंद है अनंतकाल से, उसको खोल दे। उसमें आत्मबुद्धि कर दे, अंदर में अहम् कर दे कि मैं ज्ञायक हूँ। बाद में पर्याय को जान, तो पर्याय में अहंबुद्धि नहीं होगी। मगर द्रव्य को जानना बंद करके पर्याय को जानता है तो पर्याय में आत्मबुद्धि, मिथ्याबुद्धि होती ही है। कहीं न कहीं श्रद्धा का विषय तो बनता है। यदि शुद्धात्मा - सामान्य श्रद्धा का विषय नहीं बने; तो विशेष (पर्याय) श्रद्धा का विषय बन जाता है, उसका नाम पर्यायदृष्टि, मिथ्यादृष्टि है, पर्यायदृष्टि सो मिथ्यादृष्टि है।

ये प्रयोग की बात है। जो अपना २७१ नंबर का कलश चला न, उसकी पुष्टि के लिए ये है। ये पुष्टि के लिए गाथा है। तेरे परिणाम को जानना सर्वथा बंद कर दे। दूसरे को, ये बाहर में क्या होता है, आहाहा! उसको तू जानता ही नहीं है, तो इसलिए उसको जानना बंद कर दे (ऐसा) हम कहते ही नहीं हैं। पाटनी जी! आप वहाँ क्यों बैठ गए? पाटनी जी हैं कि नहीं? पाटनी जी नहीं हैं। अच्छा! कोई दूसरे हैं।

क्या कहा? कि भगवान आत्मा जो है द्रव्य, एक अनंतगुण का पिंड ध्रुव परमात्मा और दूसरा उसमें परिणाम होता है समय-समय पर, उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय धारावाहिक होता है। द्रव्य टिकता है और परिणाम पलटता है, ऐसा जोड़ा (युगल) है, जोड़ा, जोड़का आहाहा! गुजराती में। तो उसमें से आचार्य भगवान आत्मदर्शन करने की विधि बताते हैं कि परिणाम तो है। हम 'परिणाम नहीं है', ऐसा नहीं कहते हैं मगर परिणाम को जानना बंद कर दे। क्षण भर (के लिए) बंद कर दे। थोड़ी देर के लिए बंद कर दे। बाद में हम ही कहेंगे कि पर्याय को जानने की आँख खोल दे। हम ही कहेंगे थोड़ी देर के बाद, अनुभव करने के बाद। पहले तो हमको अनुभव कराना है, द्रव्यदृष्टि कराना है।

चक्षुको सर्वथा बन्द करके जब मात्र खुली हुई only, मात्र, फक्त **खुली हुई**, जो अनंतकाल से बंद थी **चक्षु**, ज्ञायक को देखनेवाला ज्ञान अनंतकाल से बंद रखा था, वो क्यों नहीं खुलता था? कि पर्यायार्थिकचक्षु का प्रेम हो गया था, जानने का लोभ, अनंतानुबंधी का। वो (पर्यायार्थिकचक्षु) खुली रखी (थी), तो वो (द्रव्यार्थिकचक्षु) बंद अनंतकाल से है; आत्मदर्शन हुआ

ही नहीं उसको, अज्ञानी को। अनादि मिथ्यादृष्टि की बात करता हूँ, सादि मिथ्यादृष्टि की बात गौण है।

तो फरमाते हैं कि परिणाम जो है, जिस परिणाम में छहद्रव्य जानने में आते हैं, नवतत्त्व जानने में आते हैं, चौदह गुणस्थान-मार्गणास्थान-जीवसमास जानने में आते हैं, जिस ज्ञान की पर्याय में आठ कर्म, उसके भेद १४८ कर्म की प्रकृति घाति-आघाति, वो जो तेरी ज्ञान की पर्याय में परद्रव्य जानने में आ रहा है; उस ज्ञान की पर्याय को जानना बंद कर दे। आहाहा! क्या कहा? जो तेरी ज्ञान की पर्याय में परपदार्थ जानने में आ रहा है, ऐसा जो परिणाम, पर्याय प्रगट होती है तेरे पास, उस परिणाम को जानना सर्वथा बंद कर दे।

'सर्वथा बंद करे तो ज्ञान का नाश होगा, अँधा हो जाएगा' ऐसा तर्क होता है, तर्क तो होता है। अरे! अभी अँधा है तू! द्रव्य को देखता नहीं है और पर्याय में देखकर, पर्यायदृष्टि तेरी हो गयी, मिथ्यादृष्टि, वो (द्रव्यार्थिक) आँख बंद है तेरी, अभी अँधा है। अभी तू देखनेवाला हो जाएगा। हमारी बात सुनकर, ख्याल में लेकर अंतर्मुहूर्त तक प्रयोग कर। (तो कहें) कि आँख खुलेगी या नहीं खुलेगी? कि खुल जाएगी। एक आँख बंद कर तो दूसरी आँख खुल जाएगी, ऐसा switch board (स्विच बोर्ड) है अंदर में।

एक जो बंद थी द्रव्यार्थिकचक्षु, दर्शन नहीं हुआ था आत्मा का, वो (द्रव्यार्थिकचक्षु) बंद रखा था। और ये (पर्यायार्थिक) आँख खुली रखी थी भेद-प्रभेद को जानने के लिए, पर को जानने के लिए खुली रखी थी। अभी पर (द्रव्य) को जानना तू बंद कर दे। पर यानि अध्यात्म में पर - परिणाम को पर कहते हैं। नवतत्त्व के भेद का नाम परद्रव्य है, छहद्रव्य तो परद्रव्य हैं ही, प्रसिद्धरूप। वह नवतत्त्व का जो भेद है, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, वो भी सर्वज्ञ भगवान की वाणी में परद्रव्य (कहने में) आए हैं। उसको जो जाननेवाली ज्ञान की पर्याय - कितना भी अभ्यास कर लिया ग्यारह अंग तक का (और वो सब) ज्ञान में जानने में आते थे - ऐसी उस ज्ञान की पर्याय को जानना बंद कर दे। आहाहा!

और वो बंद करके **मात्र खुली हुई** एक आँख **द्रव्यार्थिक चक्षुके द्वारा देखा जाता है तब** उस पर्याय को जानना बंद करके, सामान्य स्वभाव को जब ज्ञान जानता है, देखता है, विशेष को जानना विशेष ने बंद कर दिया और विशेष सामान्य की ओर झुक गया तो उसका ज्ञान का नाम बदल गया। क्या कहा? पर्याय को जो ज्ञान जानता था, उसका नाम पर्यायार्थिकनय है। उस पर्याय को जाननेवाला ज्ञान वहाँ से वापस इधर आया, आत्मा की - सामान्य की ओर। उसका जानना बंद कर दिया और सामान्य तत्त्व शुद्धात्मा चिदानंद है, उसकी ओर विशेष आ गया, पर्याय इधर आ गयी। उधर जानना बंद किया तो पर्याय ने, ज्ञान की पर्याय ने अपने शुद्धात्मा को, सामान्य को, द्रव्य को जानने की जो प्रवृत्ति हो गयी, तो उस पर्याय का नाम द्रव्यार्थिकनय है।

द्रव्य+अर्थ+नय - जिस ज्ञान का प्रयोजन द्रव्य सामान्य को जानना है उस ज्ञान के अंश का नाम द्रव्यार्थिकनय है। द्रव्य+अर्थ+नय; नय अर्थात् ज्ञान, अर्थ यानि प्रयोजन, जिस ज्ञान का

प्रयोजन अपना सामान्य चिदानंद आत्मा को जानने का है, ऐसी ज्ञान की पर्याय का नाम द्रव्यार्थिकनय है। वो आँख खुल गयी।

देखा जाता है तब तब क्या दिखाई देता है? **तब नारकपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना - पर्यायस्वरूप विशेषोंमें**, सामान्य तो विशेष में रहता है। सामान्य तत्त्व द्रव्य सामान्य है, वो अपने जो चार और एक पाँच पर्याय कहीं - चार संसारिक पर्याय, चार गति और एक पंचमगति सिद्ध की पर्याय - वो पाँच जो विशेष पर्यायें हैं उनमें रहनेवाला (तो) एक है। एक पाँच के अंदर रहता है परंतु पाँचरूप होता नहीं है। सामान्य, विशेषरूप होता नहीं है।

सोना है ना सोना, कई आकृति बनें उसके। वो आकृति में (तो) रहता है मगर आकृतिरूप होता नहीं है। जो आकृतिरूप हो जावे तो परिणाम के नाश से द्रव्य का नाश हो जाता है। रहता है परिणाम के मध्य में, नवतत्त्व के परिणाम के मध्य में सामान्य रहता है। नवतत्त्व विशेष हैं, पर्याय के धर्म हैं। उसमें सामान्य रहता है। ऐसे चार नर-नारकादि पर्याय, देव, तिर्यंच और सिद्धगति पाँच पर्याय, विशेष। **पर्यायस्वरूप विशेषोंमें रहनेवाले**, वो भगवान आत्मा कहाँ मिलता है? कि उसका जो परिणाम है पाँच प्रकार का उसके अंदर ही रहता है। सामान्य तत्त्व उसके अंदर ही रहता है। पाँच परिणाम के बाहर सामान्य रहता नहीं है और सामान्य पाँचरूप होता नहीं है। पाँच एकरूप होता नहीं है, पाँच पाँचरूप रहता है और एक एकरूप रहता है। यह आत्मदर्शन करने की विधि है।

ऐसा एक बनाव बना, दृष्टांत है। दो भाई थे, दो भाई। साधारण स्थिति, गरीब एकदम। उसमें एक भाई अन्यमति का साधु हो गया, अन्यमति का तापसी हो गया तो बाहर जाकर तपस्या करे। तो उसको कोई ऋद्धि मिल गई और वो दूसरा आदमी, भाई था वो गरीब झोपड़ी में रहता था। तो एक बार वो आया मिलने के लिए। उसने तो गले लगा लिया, स्वागत किया, बिठाया। उसने कहा कि ये तेरी स्थिति कंगाल देखकर (के) मेरे को दया आती है। तो मैं क्या करूँ? मेरे पास पैसा तो नहीं है कि मैं बंगला लूँ, मोटर लूँ और आपका स्वागत करूँ, एयर कंडिशन में बैठाऊँ। मेरे पास तो कुछ है नहीं। ये झोपड़ी है मेरे पास तो और रोटी और शाक खाता हूँ। दूसरा कुछ मिष्ठान तो मिलता ही नहीं है। मेरे पास पैसा ही नहीं है। तो उसने कहा कि मेरे को तेरे ऊपर दया आती है। (तो) कोई रास्ता बताओ? कि देख कि एक मैं पन्ना (कागज) लिखकर देता हूँ, मंत्र। वो मंत्र पढ़कर लोहे पर पानी डाल देना तो लोहा सोना बन जाएगा। अच्छा! तो-तो कमी कहाँ रहेगी? तो-तो बंगला ही बंगला। बहुत खुश हुआ। ले लिया पत्र। पत्र लेकर वो ताला-चाबी में बंद कर दिया। एक वर्ष हुआ, दो वर्ष हुए। वो (दूसरा भाई वापस) आया कि अभी तो मोटर मेरे को लेने को आएगी। मेरा भाई तो ऐसा होगा, वैसा होगा। वो ही झोपड़ी। समझ में आया? कि भैया क्या हुआ? मेरा मंत्र झूठा है कि क्या है? कि नहीं! बराबर ताला-चाबी में मैंने रखा है, बंद रखा है। समझ में आया? आहाहा!

सोना बनाने की विधि मिल गयी तो भी प्रयोग किया नहीं। ऐसे भगवान बनने की विधि

का शास्त्र, मंत्र तो सबके पास मिल गया मगर वो प्रयोग करता नहीं है। ये परमात्मा बनने का, आत्मदर्शन का पाठ है। गुरुदेव तो इस विषय में ऐसा कहते हैं कि जो वो काम करता है उसको आत्मदर्शन होगा ही होगा। उसके ऊपर व्याख्यान छप गए हैं। वो एक पुस्तक है 'अध्यात्म-प्रवचन-रत्नत्रय' १३ व्याख्यान, उसमें उनके व्याख्यान भी हैं, छप गए हैं। ३२० गाथा, ११४ (गाथा) और २७१ (कलश)। १३ व्याख्यान हैं, तेरहपंथ है न? १३ व्याख्यान उसमें छप गए हैं। पढ़े कौन? आहाहा! चौबीसों घंटा ...

मुमुक्षु: हिन्दी में भी है वो किताब मिलता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! हिन्दी में भी मिलता है। बोलो! भाई कहते हैं कि हिंदी में भी है।

मुमुक्षु: स्टॉल पर रखी है।

पू. लालचंदभाई: स्टॉल पर रखी है? अच्छा! बोलो! मिलती है। आहाहा! मगर ताले-चाबी में रखने के लिए खरीदना नहीं। श्रीराम जी! परमात्मा बनने का शास्त्र है वो, अशरीरी बनने का, सिद्ध बनने का शास्त्र है, कुंदकुंद की वाणी! आहाहा! जिनका तीसरा नाम है, आहाहा! महावीर (भगवान) के बाद में, गौतम के बाद तीसरा नाम (है)।

वो फरमाते हैं कि पर्याय के **विशेषोंमें रहनेवाले एक जीवसामान्यको देखनेवाले** द्रव्यार्थिकनय की आँख खुली, उपयोग अंदर में गया (तो) अकेला सामान्य का, चिदानंद भगवान आत्मा का दर्शन होता है। उसमें कोई चार (गति की) और पाँचवी सिद्ध पर्याय भी दिखती नहीं है। नर-नारकादि की पर्याय तो दिखती नहीं है मगर सिद्ध पर्याय भी दिखती नहीं है। कोई पर्याय ही दिखती नहीं है क्योंकि पर्याय को देखनेवाली आँख सर्वथा बंद हो गयी इसलिए पर्याय दिखती नहीं है। पर्याय नहीं है, ऐसा नहीं; पर्याय तो है मगर पर्याय को देखना बंद कर दे। थोड़े टाइम के लिए, अन्तःमुहूर्त के लिए।

तो **जीवसामान्यको देखनेवाले और विशेषोंको न देखनेवाले**, सामान्य तो दिखता है और विशेष दिखता नहीं। सामान्य का अवलोकन करता हुआ और विशेष का अवलोकन नहीं करता हुआ, सामान्य का अवलोकन करता हुआ और विशेष का अवलोकन नहीं करता हुआ, गुजराती में सामान्यने अवलोकतो अने विशेषने नहि अवलोकतो। विशेष को जानना बंद हो गया और भगवान आत्मा का दर्शन हो गया उसको। उसका नाम **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** (तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय १, सूत्र १) है। आत्मा को जाने बिना तीनकाल में कोई भी क्रिया भले करे - पाँच लाख का दान और ये प्रतिष्ठा आनेवाली है तो उसमें दस लाख रुपया लगावे - तो (भी) धर्म नहीं होगा। पैसा, लोभ कषाय कम करने का भाव आता है मगर वो शुभभाव है भैया। आत्मा के दर्शन के बिना भव का अंत होता नहीं (है)। ये एक ही बात है।

विशेषोंको न देखनेवाले, सामान्य को देखनेवाला और विशेष को देखने की चक्षु बंद हो गयी। **जीवोंको 'वह सब जीव द्रव्य है'**। जो सामान्य को देखा तो अंदर में जो सामान्य जीव है, पारिणामिकरूप है और अनंतगुण को देखा वो भी सामान्य में गर्भित है। वो भी एक अपेक्षा से सामान्य है, वो पारिणामिकभाव है। द्रव्य के अंदर रहनेवाले अनंतगुण वो भी सामान्य में

गर्भित हो गए। अथवा गुण को भी सामान्य कहें, पर्याय उसकी विशेष, गुण को भी सामान्य कहा जाता है। मगर इधर सामान्य एकरूप अनंतगुण का पिंड सामान्य, ध्रुव परमात्मा है।

जीवोंको 'वह सब जीव द्रव्य है' पर्याय को देखना बंद हो गया तो पर्यायदृष्टि छूट गयी, पर्याय में अहंबुद्धि छूट गयी, पर्याय में ममता छूट गयी, पर्याय के अंदर मोह छूट गया, कर्ताबुद्धि छूट गयी, ज्ञाताबुद्धि छूट गयी। पर्यायदृष्टि छूटी और द्रव्यदृष्टि हो गयी। द्रव्यदृष्टि - वो दिव्यदृष्टि है, वो दिव्यता है, उसमें आनंद आता है।

'वह सब जीव द्रव्य है' ऐसा भासित होता है, भाव-भासन होता है ऐसा प्रत्यक्ष। जो पर्याय को जानना बंद कर दे और सामान्य को जाननेवाली चक्षु खोल दे कि 'सामान्य जानने में आता है, विशेष जानने में नहीं आता है'। आहाहा! यह अस्ति-नास्ति अनेकांत है, भेदज्ञान है। जाननहार जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता है, भेदज्ञान है उसमें। बाद में परिणाम को जान। दो को जान (वो) बाद में आयेगा। क्रमभंग किया है? अभी अनुक्रम में आ जा। लायक शिष्य, उसको पश्चाताप होता (है कि) हे सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा! मैंने क्रमभंग किया है। क्रमभंग यानि पहले द्रव्य को देखना चाहिए, वो देखा नहीं और पर्याय को देखने में रुक गया, वो क्रमभंग हो गया। अभी आपकी वाणी से मालूम हुआ, मेरी भूल मेरे को मालूम हो गई। अभी मैं अनुक्रम में आता हूँ। अनुक्रम में यानि पहले द्रव्य को देखूँगा, बाद में पर्याय को देखूँगा। बाद में दोनों को देखूँगा, प्रमाण से। प्रमाण से दो दिखते हैं, नय से एक दिखता है।

आहाहा! सब तीनों बातें इसमें हैं। द्रव्यार्थिकनय, पर्यायार्थिकनय और दो को एक साथ जानना, वो प्रमाणज्ञान, तीनों बातें इसमें हैं। कोई निकाली नहीं है मगर अनुक्रम है। पहले सामान्य को देखो, बाद में विशेष को देखो, बाद में सामान्य-विशेष को देखो। तो पहले तो अनंतकाल से प्रमाण के बाहर भटकता है। देखो! आत्मा के पास तो पर को जाननेवाली चक्षु ही नहीं है। आहाहा! अंदर में वर्तुल (मर्यादा) में भी नहीं आया, प्रमाण में भी नहीं आया! और कदाचित् प्रमाण में आ जाये तो पक्ष हो गया, द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु है, **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** (तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५, सूत्र ३०) है, **गुणपर्ययवत् द्रव्यम्** (तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय ५, सूत्र ३८) है। कौन न बोलता है भैया? कौन न बोलता है? प्रमाणज्ञान का विषय तो है मगर प्रमाणज्ञान पदार्थ का स्वरूप है, वो पदार्थ की सिद्धि करता है प्रमाणज्ञान। अपने प्रयोजन की सिद्धि तो उसमें से, प्रमाण में से हेय-उपादेय निकालना चाहिए। प्रमाण के अंदर ही हेय-उपादेय हैं। बाहर कहाँ हेय-उपादेय हैं? छहद्रव्य हेय भी नहीं हैं (और) उपादेय भी नहीं हैं। सचमुच (तो) ज्ञेय भी नहीं हैं। परमार्थ से तो वो ज्ञेय नहीं हैं, परमार्थ से तो इधर (स्व) ज्ञेय (है)। वो आ गया सब।

ऐसा भासित होता है। मेरा भगवान सामान्य आत्मा मेरे को अंदर में दर्शन हो गया आज। कैसे दर्शन हो गया तेरे को? कि अनंतकाल से मैंने क्रमभंग किया था कि पर्याय को पहले देखूँ, पर्याय को देखते-देखते द्रव्य का दर्शन हो जाएगा। अट्ठाईस मूलगुण, पाँच महाव्रत, आहाहा! आठ कर्म, १४८ कर्म की प्रकृति, गुणस्थान, मार्गणास्थान देखते-देखते कभी दर्शन हो

जाएगा। आहाहा! तीनकाल में होनेवाला नहीं है। विद्वान हो जाएगा मगर ज्ञानी नहीं होगा। छाबड़ा जी! सही है बात? बराबर है? अच्छा! बोलो! यहाँ के मंत्री हैं न वो बोलते हैं, बराबर है। स्मारक के (मंत्री)! एक मंत्री वहाँ बैठे हैं, बड़े मंत्री प्रदीपभाई। आहाहा!

प्रमाण तक तो अनंतबार आया। पहले तो प्रमाण में आना ही मुश्किल है। मगर प्रमाण में अटक जाता है जीव, प्रमाण में से नय निकाल नहीं सकता है। कार्तिकेयानुप्रेक्षा नाम का एक शास्त्र है, उसमें लिखा है कि प्रमाण में से जो कोई जीव निश्चयनय निकालता है वो जिनवचन में कुशल है। प्रमाण में से व्यवहार निकालता है वो तो मूढ़, मिथ्यादृष्टि है। प्रमाण में से तो व्यवहार निकालना एकदम सरल, सुगम है। मगर प्रमाण में से निश्चयनय का सामान्य तत्त्व निकाल लेना, खींच लेना, आहाहा! दूध में से घी निकालना कठिन है। दूध में से छाँछ निकालना तो आसान है। छाँछ समझे ना? ऐसे कार्तिकेयानुप्रेक्षा (नामक) शास्त्र है, उसमें कहाँ लिखा है वो मेरे को मालूम नहीं है। समझे? लिखा है कि प्रमाणज्ञान का जो विषय द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु है, सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ है, उसमें से जो कोई निश्चयनय निकालता है यानि निश्चयनय का विषय अपने परमात्मा सामान्य तत्त्व को निकालता है, वो जिनवचन में कुशल है। और नहीं निकालता है, वह कैसा है आप समझ लेना। समझे? आहाहा!

ग्यारह अंग पढ़ डाले, आहाहा! तो भी प्रमाण में तो आ गया। आहाहा! प्रमाण का विषय तो द्रव्यलिंगी मुनि के पास है और भावलिंगी मुनि ने प्रमाण में से सामान्य निकाला (है)। आहाहा! तो भावलिंग आ गया। आहाहा! इतनी भूल है। प्रमाण तक तो अनंतबार आया आत्मा। प्रमाण में आना कोई (बड़ी बात नहीं), साधारण बात है। वो तो इतने शास्त्र हैं। ओहोहो! देखो! तत्त्वार्थसूत्र में लिखा कि पाँचभाव जो हैं न वो जीव के भाव हैं, असाधारण। हें? बोलो! वो श्रद्धा करने के काबिल है? ज्ञान का विषय है। प्रमाणज्ञान में आए पाँचों ही भाव, एक द्रव्यरूप और चार भाव पर्यायरूप। आहाहा!

गुरुजी! पाँचभाव असाधारण हैं तो चार तो पर्यायरूप भाव हैं, उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक और एक पारिणामिकभाव द्रव्यरूप सामान्य है। तो उसमें से पाँचभाव तक तो आ गया, द्रव्यलिंगी मुनि। पाँचभाव तो स्वीकार किए मगर पाँच में से एक निकालना आया नहीं, उसको आता नहीं है। तो पाँचभाव को, प्रमाणज्ञान को उपादेय मान लिया, ऐसा ही मैं हूँ, ऐसा ही मैं हूँ, ऐसा ही हूँ मैं, मैं हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ। मगर प्रमाणज्ञान में से, पाँचभाव में से चार भाव हेय हैं, परभाव हैं, परस्वभाव हैं, परद्रव्य हैं, कर्मकृत हैं। आहाहा! सब आगम के वचन हैं, हो! सब आगम की बात है, परमागम में लिखा है। चार भाव जो हैं पर्यायरूप वो कर्मकृत हैं, विभावरूप हैं इसलिए हेय हैं; और एक परमपारिणामिक शुद्धात्मा (वह) एक ही उपादेय है। आहाहा! वो खींचना नहीं आया, आया नहीं उसको। विद्वान हो गया (परंतु) ज्ञानी नहीं हुआ। ऐसे अनंत-अनंतकाल बीता। अभ्यास तो प्रमाण का, पदार्थ का बहुत किया मगर उसमें से (निश्चयनय) निकालना, प्रमाणज्ञान में से निश्चयनय का विषय निकालता है, वो जिनवचन में कुशल है। वो चीज इसमें लिखी है कि पाँच प्रकार की जो पर्याय है विशेषरूप, उसमें जो एक सामान्य तत्त्व

है, उसको तू देख ले। वो कब दिखे? कि जब पर्याय को जानना सर्वथा बंद कर दे। कि साहब! कथंचित् बंद कर दूँ तो? कथंचित् की बात नहीं, सर्वथा बंद कर दे। आहाहा! तो अँधा हो जाऊँगा। कि नहीं, देखता (देखना शुरू) हो जाएगा। अभी अँधा है तू। आत्मा का जो दर्शन नहीं होता है, उसका नाम ही अज्ञानी कहो कि अंधदृष्टि कहो, एक ही बात है। आहाहा! आचार्य भगवान ने कमाल कर दिया ११४ गाथा में।

'वह सब जीव द्रव्य है' ऐसा भासित होता है। और जब द्रव्यार्थिक चक्षुको सर्वथा बन्द करके यानि उपयोग वहाँ से हट जाता है। परिणति रह गयी, परिणति चिपक गयी, परिणति छूटती नहीं है अंदर में। परिणति कहो कि लब्ध कहो; पर्याय, ज्ञान की अपेक्षा से लब्ध है, चारित्र की अपेक्षा से परिणति। ठीक है! वो जो अनंतकाल से शुद्धोपयोग नहीं हुआ था ऐसा अतीन्द्रियज्ञान के उपयोग, उपयोग में आत्मा का दर्शन हुआ।

उपयोग भले छूट गया मगर लब्ध ज्ञान, वो आत्मा को जाननेवाला चालू रह गया। और बाहर में आया तो इंद्रियज्ञान का व्यापार चालू हो गया। तो आचार्य भगवान फरमाते हैं कि अभी तेरा उपयोग बाहर आया तो उसको जानना अभी बंद कर दे। बंद करके **मात्र खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षुके द्वारा देखा जाता है**। अभी द्रव्य का दर्शन तो हो गया, उसमें अहंबुद्धि हो गयी। अहंबुद्धि द्रव्य सामान्य में होने के बाद जो पर्याय को जानता है तो पर्यायदृष्टि नहीं होती है, पर्याय का ज्ञाता होता है। पहले पर्यायदृष्टि थी, पर्याय में अहंबुद्धि थी, पर्याय में स्वामित्वबुद्धि थी, पर्याय में कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति थी, वो सब अज्ञान चला गया। अभी पर्याय को जानता है, जाना हुआ प्रयोजनवान है मगर पर्याय में अहम् आता नहीं है क्योंकि अहम् तो एक जगह (पर) होता है। लक्ष एक जगह (पर) होता है। लक्ष दो जगह पर (होता नहीं)। स्वपरप्रकाशक में भी लक्ष तो एक जगह पर रहता है, लक्ष दो प्रकार (का) होता (नहीं है), लक्ष का एक ही प्रकार है। या तो परपदार्थ का लक्ष करे तो अज्ञानी; और स्वपदार्थ का, आत्मा का लक्ष करे तो ज्ञानी बनता है।

पर्यायार्थिक चक्षुके द्वारा देखा जाता है पर्याय, **तब जीवद्रव्यमें रहनेवाले नारकपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना** इन पाँच पर्यायों को जानता है कि पाँच पर्यायें हैं, ऐसे खरगोश के सींग (जैसा असंभव) नहीं हैं। सांख्यमति (जैसा) कहते हैं ऐसी चीज नहीं है। द्रव्य में अहम् करके पर्याय को जानता है मगर पर्याय के प्रति जानने में उदासीन है। पर्याय को जानने की रुचि नहीं है, जानने का भाव नहीं है; जणित (जानने में आ) जाती है। पर्याय जणित (जानने में आ) जाये तो भी पर्याय का लक्ष नहीं है। पर्याय का लक्ष किए बिना पर्याय जानने में आती है। पर्याय को जानने के लिए पर्याय का लक्ष करना पड़ता नहीं है क्योंकि पर्याय का लक्ष करे तो द्रव्य का लक्ष छूट जाता है (और) मिथ्यादृष्टि हो जाता है। थोड़ी सूक्ष्म बात है! थोड़ी सूक्ष्म बात है!

क्या कहा? कि आत्मा का दर्शन तो हो गया। सम्यग्दर्शन-ज्ञान तो प्रगट हो गया। अंदर में ठहर नहीं सकता है। अनादि मिथ्यादृष्टि जीव है। समझे? क्षयोपशम सम्यग्दर्शन भी होता है

कितनों को। किसी को, अनादि मिथ्यादृष्टि को उपशम होता है। प्रथमोपशम हो गया तो क्षयोपशम इधर भी होता है। तो बाहर आता है उपयोग, तो ये पर्याय तो जानने में आती है, पर्याय तो। मगर पर्याय का ज्ञान होने पर भी पर्याय का लक्ष नहीं है। पर्याय के लक्ष से पर्याय का ज्ञान नहीं होता है; द्रव्य के लक्ष से पर्याय का ज्ञान हो जाता है। लक्ष छूटता नहीं है और पर्याय जणित (जानने में आ) जाती है। अहम् छूटता नहीं है इधर (द्रव्य) से और पर्याय जानने में आवे तो भी अहम् होता नहीं है। इसलिए पर्याय का लक्ष नहीं है। पर्याय जानने पर भी पर्याय का लक्ष नहीं रहता है। अंदर की ये बात है। किरीट भैया! समझ में आया कुछ?

क्या कहा? जब आत्मा का दर्शन हुआ, अंदर में निर्विकल्पध्यान में टिकता नहीं है और उपयोग इंद्रियज्ञान का बाहर चला गया, इंद्रियज्ञान का व्यापार चालू हो गया, इंद्रियज्ञान लब्ध (रूप) था न वो उपयोगरूप हो गया, तो इंद्रियज्ञान में जो पर्याय जानने में आती है मगर पर्याय का लक्ष नहीं है ज्ञानी को, लक्ष तो एक जगह पर रहता है। ज्ञान दो का और लक्ष एक का। लक्ष छूटता नहीं है। पर्याय का ज्ञाता है। पर्याय जानने में आती है मगर पर्याय का लक्ष जो होवे, तो लक्ष इधर से (द्रव्य से) छूट जाता है। लक्ष दो जगह पर नहीं रहता है; लक्ष एक जगह पर (ही) रहता है। अज्ञानी का लक्ष पर्याय पर है; साधक का लक्ष तीनों काल जहाँ तक साधक रहता है, तहाँ तक ये लक्ष द्रव्य पर है। अरिहंत हों तो भी लक्ष द्रव्य पर, सिद्ध हों तो भी (लक्ष द्रव्य पर)। आहाहा! सादि अनंतकाल लक्ष छूटता नहीं है। लक्ष छूटता नहीं है तो सम्यग्दर्शन टिकता है, लक्ष छूट जाता है तो सम्यग्दर्शन चला जाता है।

लक्ष (तो) अंदर का है और पर्याय का ज्ञान होता है। कितनी पर्याय वीतराग हो गईं, कितना राग है, कितनी शुद्धि है, कितनी अशुद्धि है, वो सब उसको जानने में आ रहा है मगर लक्ष नहीं है वहाँ। आहाहा! वो आदेय (आदरणीय) नहीं है, उपादेय नहीं है, उसके आश्रय से ज्ञान नहीं होता है, पर्याय ... नहीं होता है। पर्याय के आश्रय से पर्याय का ज्ञान नहीं होता है; द्रव्य के आश्रय से पर्याय का ज्ञान हो जाता है। द्रव्य में अहंबुद्धि हुई तो पर्याय का ज्ञान तो होता है क्योंकि ज्ञान सविकल्प है। पर्याय को जानता है कि ये पर्याय हुई मगर उस पर्याय का लक्ष नहीं है; लक्ष बिना जानता है। जैसे केवली भगवान लोकालोक को जानते हैं मगर लोकालोक का लक्ष नहीं है। ऐसे श्रुतज्ञानी, ऐसे श्रुतज्ञानी का लक्ष पर ऊपर जाता ही नहीं है; लक्ष बिना जणित (जानने में आ) जाता है। आहाहा! राग जणित (जानने में आ) जाता है परंतु राग का लक्ष करके राग का ज्ञान नहीं होता है।

अचलं परलक्ष्येऽभावाच्चंचलता-रहितं (परम अध्यात्म तरंगिणी - समयसार कलश ४२ की टीका) आहाहा! श्रुतज्ञानी का लक्ष तो आत्मा पर है। इंद्रियज्ञान पर को जानता है, मैं तो पर को जानता नहीं हूँ। तो भी जणित (जानने में आ) जाता है, तो जणित (जानने में आ) जाता है। लक्ष नहीं है (उस पर), (उसकी) उपेक्षा है, उदासीनता है। आहाहा! पर को जानने की अभिलाषा नहीं है क्योंकि पर को जानने से शुद्धि की वृद्धि नहीं होती है। आत्मा में स्थिरता जितने प्रमाण में होती है उतने प्रमाण में निर्जरा होती है। पाँच मिनिट बाकी हैं, ३.५० तक पूरा

करना है।

क्या कहा? द्रव्य को जानने का चक्षु बंद किया और पर्याय को जानता है तो पर्याय पाँच प्रकार की है, तो जानता है। **सिद्धपना - पर्यायस्वरूप अनेक विशेषोंको देखनेवाले और सामान्यको न देखनेवाले जीवोंको**, क्योंकि जो पर्याय विशेष को देखती है वो पर्याय सामान्य को देखती नहीं है। वो विशेष को देखनेवाला इंद्रियज्ञान हो गया, वो सामान्य को देखता नहीं। आहाहा! क्या कहा? **विशेषोंको देखनेवाले और सामान्यको न देखनेवाले**। वो सामान्य को देखती है और विशेष को देखती नहीं। ये विशेष को देखती है, ये ज्ञान सामान्य को देखती नहीं। बहन! ऐसी बात है! आहाहा!

क्या कहा? कि विशेष को जानते हैं मगर उस ज्ञान सामान्य को नहीं जानते हैं। **और सामान्यको न देखनेवाले जीवोंको (वह जीव द्रव्य) अन्य-अन्य भासित होता है,** विशेष को देखो तो आत्मा अन्य-अन्य नर-नारकादि पर्यायरूप अनेक-अनेकरूप दिखाई देता है। **क्योंकि द्रव्य उन-उन विशेषोंके समय तन्मय होनेसे उन-उन विशेषोंसे अनन्य है,** वो पर्याय आत्मा से अनन्य है। तो पर्याय को देखता है, नारकादि पर्याय, मनुष्य आदि पर्याय को जो जानता है, वो सामान्य को उस समय नहीं जानता है क्योंकि वो चक्षु बंद हो गयी है। कोई अलौकिक बात है! अलौकिक बात! वचनातीत बात है।

देखो! अभी उसके लिए एक दृष्टांत देते हैं, दृष्टांत। **कण्डे, घास, पत्ते और काष्ठमय अग्निकी भाँति।** कंडे का क्या अर्थ होता है? छाणा, अच्छा! जो **घास,** तो बराबर, सूखा घास और **पत्ते** सूखे पत्ते और **काष्ठमय** लकड़ीमय **अग्निकी भाँति**, जो अग्नि काष्ठ को जलाती है, तो वो अग्नि काष्ठमय दिखाई देती है, अनन्य है। अग्नि काष्ठमय, पत्तेमय दिखाई देती है। **(जैसे घास, लकड़ी इत्यादिकी अग्नि उस-उस समय घासमय, लकड़ीमय इत्यादि होनेसे घास, लकड़ी इत्यादिसे अनन्य है,** अग्नि वो जो-जो पदार्थ है, उसको जलाती है, उस समय उस पदार्थ से अनन्य है।

उसीप्रकार द्रव्य उन-उन पर्यायरूप विशेषोंके समय तन्मय होनेसे उनसे अनन्य है - पृथक् नहीं है।) पर्याय से देखो तो वो द्रव्य उसरूप हो गया और द्रव्य से देखो तो उसरूप हुआ नहीं है। अन्य भी है और अनन्य भी है; पर्याय से देखो तो अन्य-अन्य है और द्रव्य से देखो तो वो ही का वो ही, वो ही का वो ही, वो है का वो ही। सब में अग्नि, सब में अग्नि, सब में अग्नि, अग्नि-अग्नि एक जैसी है। निमित्त अलग-अलग होता है (मगर) अग्नि तो एक होती है।

और जब उन द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों आँखोंको एक ही साथ खोलकर, अभी दोनों आँखें खोलो एक साथ। पहले क्रम पड़ा था अभी दो आँखों से देखो तो सामान्य-विशेष एक साथ दिखाई देते हैं। अक्रम, प्रमाण से अक्रम हैं द्रव्य-पर्याय; नय से क्रम है। नय से देखो तो क्रम पड़ता है; प्रमाण से देखो तो द्रव्य-पर्याय एक साथ युगपद्। युगपद् का ग्राहक है प्रमाणज्ञान। नय में मुख्य-गौण होता है; प्रमाण में मुख्य-गौण होता नहीं है। आहाहा! ऐसा है।

और जब उन द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों आँखोंको एक ही साथ खोलकर

उनके द्वारा और इनके द्वारा (द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक चक्षुओंके) देखा जाता है तब नारकपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना पर्यायोंमें रहनेवाला जीवसामान्य तथा जीवसामान्यमें रहनेवाला नारकपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धत्वपर्यायस्वरूप विशेष तुल्यकालमें ही (एक ही साथ), प्रमाण में एक ही साथ द्रव्य-पर्याय जानने में आते हैं, क्रम नहीं पड़ता है। **दिखाई देते हैं।** ऐसे प्रमाण से एक साथ द्रव्य-पर्याय दिखती है और नय से क्रम पड़ता है। मगर प्रमाण में से पहले, प्रमाण में से पहले नय में आना चाहिए और नयपूर्वक प्रमाण होता है तो प्रमाण सम्यग्ज्ञान है। पहले सामान्य प्रमाण, विकल्पात्मक प्रमाण, अनुभव के पहले द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु को जानो तो पर से जुदा पड़ गया। पर से एकदम जुदा पड़ गया। प्रमाण से बाहर मेरी कोई चीज है नहीं। प्रमाण में आया और प्रमाण के पक्ष में अटकना नहीं। तो क्या करना? कि कार्तिकेयानुप्रेक्षा (में) स्वामी कार्तिकेय फरमाते हैं कि प्रमाण में से जो कोई जीव निश्चयनय निकालता है वो जिनवचन में कुशल है। आहाहा! तो नय से निकाला (और) भगवान आत्मा का दर्शन कर लिया। बाद में अनुक्रम में आ गया। अनुक्रम - पहले द्रव्य को जानो, बाद में पर्याय को जानो, जाना (कि) पर्याय है; ना नहीं है, जानने में आता है। और युगपद् साथ में जानो तो द्रव्य-पर्याय एक समय में जानने में आता है, उसमें कोई क्रम नहीं पड़ता (है)। एक साथ जानने में आये उसका नाम प्रमाणज्ञान है।

ऐसे इस गाथा के ऊपर व्याख्यान हो गए है। और इधर भी स्टॉल में यह पुस्तक इधर मिलती है। हमारे पास भी है गुजराती में। उसको पढ़ लेना। अपनी प्रयोजनभूत बात इसमें है। प्रमाण में से नय निकालकर आत्मदर्शन हो जाता है। टाइम हो गया।